हिंदी नवजागरण,स्त्री दर्पण पत्रिका और स्त्री प्रश्न

मुकेश कुमार यादव

शोधछात्र,हिंदी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय ,इलाहाबाद

नवजागरण संज्ञा का इस्तेमाल पुनर्जागरण के पर्याय के रूप में होता है। पुनर्जागरण का अर्थ है 'फिर से जगना' और नवजागरण का 'नए सिरे से जगना'। नवजागरण के नए ज्ञान-चिंतन का सम्बन्ध पाश्चात्य ज्ञान-चिंतन से है। इसका संबंध उस आधुनिकता से है, जिसके केंद्र में तर्क और बौद्धिकता है, जो मनुष्य केन्द्रित चिंतन की प्रस्तावना करता है।

भारत में अंग्रेजों और कंपनी के बढ़ते हस्तक्षेप के प्रति भारतीय जनता आरम्भ में उदासीन रही, लेकिन जैसे ही भारतीयों के सामाजिक-सांस्कृतिक मामलों में हस्तक्षेप शुरु किया गया, भारतीयों को और अश्वेतों को असभ्य बताते हुए उन्हें सभ्य बनाने के लिए श्वेतों की नैतिक जिम्मेदारी के जरिए औपनिवेशिक शासन् के नैतिक औचित्य को साबित करने का प्रयास किया गया, भारतीय जनता अपनी तटस्थता छोड़कर सांस्कृतिक धरातल पर औपनिवेशिक सत्ता का प्रतिरोध करते हुए सामने आई। सांस्कृतिक धरातल पर किए जाने वाले इसी प्रतिरोध ने 19वीं शताब्दी में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का रुप ग्रहण किया। इसे ही नवजागरण, पुनर्जागरण या सांस्कृतिक जागरण की संज्ञा दी गई तथा पश्चिम में उभरे लोकतंत्र, व्यक्ति की वैयक्तिकता, प्रेस के जरिये सामाजिक जागरूकता लाने के तौर-तरीकों, मौलिक अधिकारों और धर्म बनाम नैतिकता के प्रश्नों के साथ-साथ अपनी परंपरा को विवेक की कसौटी पर जाँचने-परखने की अवधारणा मिली जो भारतीय संस्कृति का मूल आधार बनी।

नवजागरण को जिस अर्थ में व्याख्यायित किया जाता है, उसका प्रसार अन्य भारतीय प्रांतों (बंगाल,महाराष्ट्र,पंजाब) के मुकाबले हिन्दी भाषी समाज में देर से हुआ। हिन्दी साहित्य समाज में नवजागरण का आरम्भ सन् 1857 के आस-पास से माना जाता है। डॉक्टर रामविलास शर्मा नवजागरण को 'राष्ट्र की नवचेतना' का युग मानते हैं परंतु इसका राजनैतिक पक्ष जितना सशक्त व अग्रगामी चेतना से युक्त था, सांस्कृतिक, सामाजिक पक्ष उतना ही अन्तर्विरोध ग्रस्त,पिछडा व स्वार्थपरक मूल्यों वाला था। डॉक्टर वीर भारत तलवार अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

"जिसे हिन्दी नवजागरण कहा जाता है, वह दरअसल ब्रह्म समाज और खासकर आर्य समाज के धार्मिक सुधारों के खिलाफ, उनकी प्रतिक्रिया में हुआ सनातनी बुद्धिजीवियों का आंदोलन था; जिसमें उस समय के सभी बड़े हिन्दी लेखकों और संपादकों ने हिस्सा लिया। .....भारतीय नवजागरण मुख्यतः धर्म व समाज के सुधार का आंदोलन था जबकि हिन्दी नवजागरण का मुख्य लक्ष्य यह कभी नहीं रहा, उल्टे इसके नेता धर्म के परम्परागत स्वरूप में बुनियादी सुधारों का विरोध करते थे। सामाजिक सुधारों के मामले में सबसे प्रधान मुद्दा, स्त्री प्रश्न पर उनका नजरिया पिछड़ा हुआ और दुविधाग्रस्त था । आर्य समाज और ब्रह्म समाज की तरह स्त्री शिक्षा का उत्साहपूर्ण आंदोलन उन्होंने कभी नहीं चलाया । विधवा विवाह के प्रश्न पर एक-आध अपवाद को छोड़कर या तो वे इसके विरोधी रहे हैं या दुविधाग्रस्त। बालविवाह का विरोध करते हुए भी उन्होंने इसके खिलाफ कोई प्रभावशाली प्रचार नहीं चलाया । उन्होंने स्त्री चेतना के किसी नए आधार को प्रोत्साहित नहीं किया । यही वजह है कि उन्नीसवीं सदी के तथाकथित हिन्दी नवजागरण में स्त्री चेतना की दृष्टि से ऐसी कोई हिन्दी लेखिका नहीं हुई जिसकी तुलना उस दौर की बंगाली या मराठी लेखिका से की जा सके ।"

उन्नीसवीं सदी के नवजागरण कालीन सुधार आंदोलनों में सम्भ्रांत पुरुष- सुधारकों का सबसे बड़ा अन्तर्विरोध स्त्री-पुरुष के बीच दोहरे मानदण्डों के इस्तेमाल का था। भारतेंदु ने लड़कों की शिक्षा में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विषयों को जरुरी ठहराया लेकिन लड़कियों के पाठ्यक्रम से उन्होंने विद्यांकुर (पदार्थ-विज्ञान) तथा 'इतिहाससतिमिरनाशक' (इतिहास को आधुनिक दृष्टिकोण के रुप में प्रस्तुत) नामक पुस्तकों को हटाने के लिए कहा। स्त्रियों को शिक्षा किस ढंग से दी जाए, इसे बताते हुए उन्होंने कहा "ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल-धर्म सीखें, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज शिक्षा दें।" उन्होंने लड़कियों की शिक्षा में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जगह चरित्र-निर्माण, धार्मिक व घरेलू प्रबंधन के बारे में बताने वाली किताबें पाठ्यक्रम में लगाने को कहा ।

भारतीय नवजागरण की जनचेतना के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उस समय प्रकाशित होने वाली पत्र पत्रिकाओं ने निभाई। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु के नेतृत्व में अनेक छोटी-बड़ी पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जो उस दौर के सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलनों के नेतृत्व देने का काम भी कर रही थीं। भारतेंदु द्वारा हिन्दी की पहली स्त्री पत्रिका, 'बालाबोधिनी' का प्रकाशन 1874 से आरम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी का आरंभिक दौर हिन्दी पत्रिकओं का स्वर्णिम दौर कहा जा सकता है। साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक हो या स्त्री केंद्रित पत्रिकाएँ हों, इस दौर में पत्रिकाएं मिशन की तरह चलाई गई हैं। भारतीय स्त्रियों को नारी जागरण से स्त्री आंदोलन तक पहुंचाने में स्त्री केंद्रित पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसमें 'गृहलक्ष्मी' , 'स्त्री-धर्म-शिक्षक' , 'आर्य-महिला' का नाम उल्लेखनीय है। इन पत्रिकाओं के बीच भारतीय स्त्रियों को समाज में मनुष्योचित पद दिलाने का संकल्प लेकर चलने वाली 'स्त्री-दर्पण' नामक पत्रिका अहम स्थान रखती है। इस संबंध में वीर भारत तलवार अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में लिखते हैं- "स्त्री लेखन बंगाल में 1850 से शुरु हो चुका था। 1880 के बाद वहाँ स्त्रियों ने उपन्यास समेत हर विधा में लिखना शुरु किया और खुद स्त्री-पत्रिकाएं निकालनी शुरु की।....हिन्दी में इस ढंग की पहली कोशिश 1909 (स्त्री-दर्पण) में हुई।

''स्त्री-दर्पण'' बीसवीं सदी के प्रथम दशक में निकलना प्रारंभ हुई। यह दौर भारत में उथल-पुथल का दौर था और स्वतंत्रता आंदोलन संगठित रूप धारण कर रहा था। व्यापक और वंचित स्त्री समाज में जागरूकता उत्पन्न करना और उसे मुख्यधारा में शामिल करना इस पत्रिका का उद्देश्य था।

'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के संपादक रामेश्वरी नेहरू तथा मैनेजर कमला नेहरु थी। इसका प्रकाशन सन् 1909 में इलाहाबाद में 'ला जनरल प्रेस' 22 जॉर्जटाउन से आरम्भ हुआ। यहाँ से इसका प्रकाशन 1923 तक होता रहा तथा इसके बाद इसका प्रकाशन कानपुर से होने लगा और यहाँ से इसका प्रकाशन 1929 तक होता रहा। जुलाई 1910 से जनवरी 1929 तक के अंक कई लाइब्रेरियों--हिन्दी साहित्य सम्मेलन (इलाहाबाद), केंद्रीय पुस्तकालय (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) में पढ़ने के लिए उपलब्ध हैं परंतु कुछ बीच के अंक उपलब्ध नहीं है। सन् 1909 से लेकर 1914 तक का समय 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका को स्थापित करने में लगा। 1914 के बाद के अंक इसकी वैचारिक संपन्नता के साक्षी हैं ।'स्त्री-दर्पण' में स्त्रियों से जुड़े हर एक छोटे-बड़े सवाल को उठाया गया और उस पर बहस हुई।

'स्त्री-दर्पण' के विभिन्न अंकों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका रुझान कविता आदि लिखने से ज्यादा वैचारिक लेखन की ओर था पत्रिका के लिए लिखने वालों में स्त्रियों की संख्या काफी बड़ी थी। 'स्त्री-दर्पण' में महिलाओं ने कहानी और कविता लेखों की तुलना में कम लिखे हैं, इसके दो कारण हैं -- एक तो यह कि महिलाओं की रचनात्मकता और उनके खुलकर सामने आने का यह शुरुआती दौर था, कविता और कहानी जैसी अपेक्षाकृत जटिलता की मांग करने वाली विधाओं को साधना जरा मुश्किल काम था। दूसरा; स्त्री समाज के लिए समय व जरूरतें ऐसी थी कि बातें सीधे-सीधे कह जाने पर

अधिक प्रभावी होने की उम्मीद थी क्योंकि रचनात्मकता की दृष्टि से ही नहीं, पाठकीय ग्राह्य क्षमता की दृष्टि से भी व्यापक स्त्री समाज का यह प्रारंभिक दौर था।

अक्टूबर 1919 के अंक में अमीचंद्र शर्मा की कविता छपी है 'स्त्रियों पर दबाव व स्त्रियों का पद' स्त्री-शिक्षा का समर्थन करते हुए व पर्दा प्रथा का विरोध करते हुए कवि अपनी अवधारणाओं के लिए प्राचीन भारतीय परंपरा को उद्धृत करता है-

"हुई है नारी आज यहाँ पदत्राण

स्त्री शुद्र ना पड़े यह कहना। है सरासर ग़फ़लत रहना।

गार्गी के सम हो सब बहना। बहनों की अब है चहना।

ना मुँह पर मुसक्याना हुई है।

चित्रण में कह घूँघट पट है। सच पूछो बे-विद्या हठ है।

घूँघट बिन क्या कुलता घट है। घूंघट पर कई आंखें डट हैं।

करें घूँघट हैं ।। हान हुई हैं ।"

स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के लिए भारतीय स्त्री के अधिकारों के साथ जुड़ा हुआ था। मई 1925 के अंक में लीलावती देवी द्वारा लिखा गया लेख "स्त्रियों का सच्चा सौंदर्य" प्रकाशित हुआ; जिसमें स्त्रियों की अशिक्षा को भारत की पराधीनता का कारण बताया गया है- "दुख की बात है कि इतना सब जानते हुए भी लोग स्त्रियों को पढ़ाना अच्छा नहीं समझते। जहाँ दो मिलीं वहाँ एक दूसरे की बुराई, लड़ाई-झगड़ा करती हैं। इन सबका असल कारण अविद्या है। भारत के अध:पतन का भी एकमात्र कारण अविद्या है, क्योंकि यही फूट का घर है। इस विषय में मेरा यही कहना है कि "प्रिय बहनों! स्त्रियां कुछ नहीं पढ़ी लिखी होने के कारण अपनी संतान को नहीं पढ़ातीं, अगर उनसे कहा जाए तुम पढ़कर अपनी संतान को पढाओ तो वे यूँ कहती हैं- "कहीं बूढा तोता भी राम-राम रटता है?"

अप्रैल 1916 के अंक में श्रीमती महिला मिश्रा की छपी कहानी है 'वसीयत- नामा'। 'स्त्री-दर्पण' में इस बात पर खूब बहस हो चुकी थी कि शिक्षा पाकर स्त्रियां कैसी बनें? यदि वे शिक्षा पाकर परम्परागत भारतीय आदर्शों को ठुकराती हैं, परिवार नामक संस्था में अपनी आस्था नहीं दिखाती है, तो अन्ततः उन्हें पछताना पड़ेगा।

बाल विवाह की कुप्रथा और बाल विवाह (बाल विधवाओं) की स्थिति का चित्रण करती है -- श्रीयुत गिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' की कहानी 'सरोजनी'; जो जुलाई 1916 के अंक में प्रकाशित हुई, जिसमें एक सुशिक्षित वकील राधाबिहारी अपनी रुढ़िवादी धर्मपत्नी के दबाव में आकर अपनी नौ वर्ष की पुत्री का विवाह रमाशंकर से करा देते हैं जो कक्षा ग्यारह का विद्यार्थी है। विवाह के तीन महीने बाद हैजे से रमाशंकर की मृत्यु हो जाती है, 18 वर्ष बाद जब सरोजिनी ससुराल जाती है तो विधवाओं की सास के हाथों दुर्दशा का नमूना बनती है। कहानी का अन्त सरोजिनी द्वारा आत्महत्या किए जाने से होता है; सरोजिनी अपने प्राण देने के पूर्व एक पत्र लिखती है जो विधवाओं की दुर्दशा को पूरी मार्मिकता के साथ उजागर करता है। इसका एक अंश–

"तुम्हारे अत्याचार की वेदी पर मैं आज अपने को निछावर कर रही हूं, मुझ जैसी अबलाओं के लिए तुमने यह संसार नरक से भी दु:खमय बना दिया है। .... सावधान! सावधान!"

मृतस्त्रीक विवाह के खिलाफ देहरादून की श्रीमती गुलाबदेवी चतुर्वेदी ने आंदोलन चला रखा था। 1917 और 1918 के अंको में इन्होंने लेख लिखकर जागरूकता का माहौल तैयार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जुलाई 1918 के अंक में श्रीमती गुलाबदेवी की कहानी छपी थी, 'आदर्श-सखी' जिसके अन्त में उन्होंने कहा है-

"आशा है कि आप किसी सखी का विवाह किसी दुराचारी के साथ होता हुआ देखेंगी, तो उसकी रक्षा करने का भरसक यत्न करेंगी । अनुचित विवाह से हमारा देश पिसा जाता है, हमारी बहिनें कुचली जा रही है ।"

नवंबर 1911 के अंक में श्रीयुत माधव शुक्ल की कविता है -- 'आकाशवाणी' । इस कविता में कवि स्त्रियों को विद्या की ओर लगाने और उनकी स्वतंत्रता की बात करता है, ऐसा करने पर ही समूचे संसार में हमारी ख्याति होगी, अन्यथा- सफ्रोजिस्ट औरतों के द्वारा पाई गई सफलता का जिक्र, औरतों की सामाजिक जीवन में भागीदारी और पुरुष की स्थिति का चित्रण कुछ इस प्रकार हुआ है-

"इधर बसन्ती ने घर पीटो डंका चोब 'स्वराज'।

छूटे होश भगे ले लोटा, बिछड़ गए सब काज।।

मर्द से औरत कहलाए।।

जहाँ देखो तहं बैयर बानी बनीं जात-सरजात।

ये मर्दुआ अकिल की कीचड़ रपट पड़े महाराज।।

गौसैयां रूप से पथरा।।"

नवजागरण के दौर में जो स्त्री प्रश्न 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के माध्यम से उठाए गए थे उन प्रश्नों की स्थिति आज भी कमोबेश वैसी ही है जैसी तब थी। प्रश्न आज भी वहीं है, भले ही उनका स्वरुप बदल गया हो। स्त्रियों का एक बड़ा वर्ग आज भी हाशिए पर है और उनसे जुड़े मुद्दों-- जैसे स्त्री अशिक्षा, विधवाओं की स्थिति, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, स्त्री स्वाधीनता व अन्य कुरीतियों पर आज भी लोगों में द्वंद्व की स्थिति है जो साफ देखी जाती है। ऐसे में नवजागरण कालीन चेतना व्यापक स्तर पर बदलाव का आधार प्रस्तुत करती है।

अपनी वस्तुस्थिति, आदर्श और व्यवहार इन तीनों के तालमेल से बुनी 'स्त्री-दर्पण' की रचनाओं की प्रासंगिकता को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है जिसमें स्त्रियों की स्वाधीनता, बराबरी का दर्जा देने की बात की गई है ऐसा करने पर ही घर और बाहर, समाज व देश में ख्याति होगी-

"यह भूल है तुम्हारी तुम सोचते हो यह जो।

होंगे स्वतंत्र एक दिन होगा स्वराज तुमको।।

पहले तो अपने घर में सीखो स्वराज करना।

हम भी करेंगे एक दिन, दम इसका पीछे भरना।।

जिस देश में कि नर और नारी दोनों है एक दिल।

उसको स्वतंत्र होना कुछ भी नहीं है मुश्किल।।"

जर्जर और फूहड़ सामंती व्यवस्था से उपजी सोच की संकीर्णता से ऊपर उठकर स्त्री स्वतंत्रता,स्त्री-पुरुष के बीच दोहरे मानदंडों की समाप्ति जैसे प्रश्न आज इक्कीसवीं सदी में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उन्नीसवीं सदी में थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्त्री दर्पण पत्रिका के अंक ,हिंदी साहित्य सम्मलेन ,इलाहाबाद
2. रस्साकशी ; वीर भारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012
3. स्त्री : मुक्ति का सपना ; अरविंद जैन, लीलाधर मंडलोई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009
4. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण ; रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1989
5. भारतीय नारी : संघर्ष और मुक्ति ; वृंदा करात, (अनुवादक) उबा चौहान, 2008
6. भारतीय समाज में नारी ; नीरा देसाई मैकमिलन इंडिया लिमिटेड 1982
7. राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य ; वीर भारत तलवार, हिमालय पुस्तक भंडार, दिल्ली 1993
8. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता; ब्रह्मानंद वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1986